International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 19-11-2018; Accepted: 23-12-2018
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 1; January 2019; Page No. 27-29

कथक नृत्य का रायगढ़ दरबार, शैली या घराना : एक समीक्षा

यास्मीन सिंह
Ph.D. Scholar, Raja Mansingh Tomar Music & Arts University, Gwalior, Madhya Pradesh, India

सारांश
प्रायः कलाओं में भावनाओं और संवेदनाओं का महत्व रहा है। संभव है, कि कहीं–न–कहीं भावनाओं के आधार पर बातें कहीं जाती है, तो कहीं संवेदनाओं के आधार पर निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है। किन्तु किसी भी विषय का अन्वेषण में भावनाओं और संवेदनाओं का स्थान प्रायः नहीं होता, वह मुख्य रूप से तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। कथक नृत्य में किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित या पल्लवित पद्धति या तकनीक या शैली, जिसे उस व्यक्ति ने अपनी पीढ़ी को हस्तांतरित किया हो, जो निर्बाध रूप से उस व्यक्ति के साथ–साथ तीन पीढ़ीयों तक निर्बाध रूप से गतिशील रही हो, तो घराने के रूप में ग्रहण किया जाता सकता है।

मूल शब्द : घराना, पद्धति, संकल्पना, कथक नृत्य, समीक्षा।

प्रस्तावना
आमतौर पर कथक के रायगढ़ घरानें के सन्दर्भ में यह बात चर्चा में रही है और कहीं–कहीं विवादों में भी, कि कथक नृत्य के क्षेत्र में रायगढ़ को 'दरबार' कहा जाये, 'शैली' कहा जाये या फिर 'घराना'। कथक नृत्य के क्षेत्र में विभिन्न विद्वानों ने रायगढ़ को शैली या दरबार मात्र होने की बात कहते आ रहे हैं। जबकि एक वर्ग इसे कथक नृत्य के अन्य घरानों की भाँति 'रायगढ़ घराना' मानते हैं। प्रायः कलाओं में भावनाओं और संवेदनाओं का महत्व रहा है। संभव है, कि कहीं–न–कहीं भावनाओं के आधार पर बातें कहीं जाती है, तो कहीं संवेदनाओं के आधार पर निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है। किन्तु किसी भी विषय का अन्वेषण में भावनाओं और संवेदनाओं का स्थान प्रायः नहीं होता, वह मुख्य रूप से तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। प्रस्तुत लेख के माध्यम से विभिन्न विद्वानों द्वारा घरानें के संबंध में दिये तर्कों, संकल्पनाओं और परिभाषाओं का अध्ययन करते हुए प्राप्त मुख्य तथ्यों की कसौटी में रायगढ़ की कथक नृत्य परम्परा को रखते हुए इस बात को सिद्ध करने का प्रयास है, कि रायगढ़ दरबार है; शैली है या फिर घराना।

संगीत–कला के क्षेत्र में 'घराना' शब्द विशेष महत्त्व है। यदि कहा जाये, कि 'घराना' शब्द संगीत–कला का पर्याय है, तो किंचित मात्र भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। संगीत के क्षेत्र में गायन, वादन और नृत्य के अपने–अपने घराने हैं। इन घरानों की अपनी विशिष्ट प्रदर्शन शैली ही इन्हें परस्पर एक–दूसरे से पृथक् करती है और समान विधा होने के कारण एक–दूसरे से बांधे रखती है।

संगीत–कला में घरानों की संकल्पना अधिक पुरानी नहीं है। लगभग मुगल काल के मध्य और उत्तरार्द्ध में घरानों का प्रभुत्व विशेष रूप से लक्षित होता है। क्योंकि 13वीं शताब्दी के ग्रंथ शारंदेवकृत संगीतरत्नाकर, लगभग 17वीं शताब्दी में दमोदर पंडितकृत 'संगीतदर्पण' एवं जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंहदेव कृत 'श्रीराधागोविंद संगीतसार' (लगभग 18वीं शताब्दी) में संगीत के घरानों के संबंध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अतः प्रतीत होता है, कि संगीत–कला में घराना परम्परा मौखिक रही होगी। गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से संगीत की शिक्षा दी जाती थी और इसी परम्परा ने धीरे–धीरे घरानों का स्वरूप धारण कर लिया हो, ऐसा कहा जा सकता है। संगीत–कला में घरानों के प्रादुर्भाव संबंधी विषय पर कुछ सीमा तक राजनीतिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी प्रतीत होती हैं।

घराने की उत्पत्ति
विशेष रूप से उल्लेखनीय है, कि घरानों के संबंध में जहाँ कुछ विद्वानों ने नकारात्मक तथ्य उल्लिखित किये है, वहीं दूसरी ओर सकारात्मक रूप से भी घराने के विषय में विद्वान अपनी–अपनी बात कहते हैं। इस संबंध में कला–विचारकों और मर्मज्ञों ने अपनी–अपनी दृष्टि से घरानों के बनने की परिस्थितियों पर चर्चा की है। कुछ का मानना है, कि यह राजनीतिक अस्थिरता का परिणाम है, तो कुछ इसे तत्कालीन कलाकारों के बीच पनपने वाली संकीर्ण मानसिकता को उत्तरदायी मानते हैं।

राजनीतिक कारणों को स्वीकार करने वाले विचारकों का मतानुसार– राजपूतकाल में ही मुसलमानों के भारत पर निरन्तर आक्रमणों के कारण यहाँ राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई एवं सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध हो गया। इसके अतिरिक्त इतिहासकारों के अनुसार राजपूतकाल के संगीत का पुष्प पूर्ण रूप से इसलिए विकसित न हो सका, क्योंकि इस काल के कलाकारों की मनोवृत्ति बड़ी संकीर्ण और ईर्ष्यापूर्ण थी। एक कलाकार, दूसरे कलाकार को नीचा दिखाने का प्रयास करता था। जो कलाकार उच्च स्तर पर पहुँच जाते थे, वे इतने अहंकारी हो जाते थे कि उनसे देश को कोई नवीन प्रकाश नहीं मिल पाता था। इस प्रकार ये कलाकार अपने संगीत ज्ञान को छिपाकर रखते थे और अपनी ही जाति वालों तक को बताने में संकोच करते थे। इसी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण संगीत के क्षेत्र में घराने की नींव पड़ गई।[1]

संगीत शिक्षण संगीतज्ञों, संगीतकारों आदि से व्यक्तिगत रूप से ही ग्रहण किया जाता था। ये कलाकार संगीत कला की शिक्षा प्रदान करने का एक मात्र साधन होने का कारण अतिसंकीर्ण मानसिकता के धारक हो गये थे और अपनी कला को अपने अथवा अपनी संतान व कुछ प्रमुख शिष्यों तक ही सीमित रखना चाहते थे। परन्तु संगीतकारों की ऐसी विचारधारा होने पर भी रियासती शासकों ने संगीत के प्रति श्रद्धाभाव के परिणाम स्वरूप संगीत रूपी दीपशिखा प्रज्जवलित होती रही।[2]

मध्यकाल के अंतिम चरण में 'घराना' शिक्षण पद्धति चरमोत्कर्ष पर थी। इस संबंध में यदि किसी घराने की गुरु–शिष्य परम्परा पर दृष्टि डालें, तो सहज ही ज्ञात हो जाता है कि विद्याध्ययन में गुरु–शिष्य परम्परा, जो कि प्राचीनकाल से प्रचलित है– घरानों की अभिन्न सहचारिणी रही है।'[3]

'घराना' की अवधारणा

कथक नृत्य के भी अपने घराने रहे हैं। कथक नृत्य शैली में संगीत की अन्य विधाओं की तरह समय–समय महान विभूतियों का जन्म हुआ, जिन्होंने अपनी बुद्धि–कौशल से नये सिद्धान्तों को जन्म देकर प्रयोग रूप में भी विकसित करते हैं। जनसाधारण में सामाजिक मान्यता मिलने पर एक स्थायी शैली का निर्माण होता है और शैली घराने के नाम से प्रसिद्ध होने लगती है। निश्चित रूप से इन महान विभूतियों की शैलियाँ उस शहर या क्षेत्र के प्रभाव से वंचित नहीं रहती और परिणामतः अन्य विधाओं के समानान्तर कथक के भी घराने निश्चित स्थान और शहर के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

कथक नृत्य के क्षेत्र में सबसे वरिष्ठ घराना जयपुर घराना है, इसके पश्चात् लखनऊ का स्थान द्वितीय तथा बनारस घराना तीसरा स्थान रखता है। कालान्तर में मध्यभारत अर्थात् मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ (संयुक्त रूप से) में रायगढ़ रियासत या दरबार कथक नृत्य के घराने के रूप में स्थापित हुआ। हालांकि कुछ विद्वानों ने इसे घराने के रूप में स्वीकार न करते हुए 'दरबार' अथवा 'शैली' के रूप में स्वीकार किया है, जबकि इस घराने की विस्तृत शिष्य परम्परा के आधार पर इसे 'रायगढ़ घराना' के रूप में स्थान दिया गया है।

इस संबंध में सर्वप्रथम घराना शब्द से आशय आवश्यक हो जाता है। ''घराना' का शाब्दिक अर्थ घर, परिवार, वंश, कुटुम्ब आदि होता है। गुरु व उसके शिष्य द्वारा परिवार के रूप में तीन–चार पीढ़ियों का सिलसिला बनाये रखने पर उस परम्परा को घराना के नाम से अभिहीत किया जाता है।'[4] पं.तीरथ राम आज़ाद जी के अनुसार 'घराना' का आदि–स्रोत संस्कृत भाषा के शब्द 'गृह' से उद्‌भुत हुआ है और सामान्य तौर हिन्दी में 'घर' संज्ञा दी गई। संस्कृत के गृह से घर शब्द बना और घर से विकसित होकर घराना शब्द निर्मित हुआ। अर्थात् कोई ऐसा घर जिसकी कुछ अपनी पहचान के लिए कुछ अलग प्रकार की विशेषतायें हों। घराने वस्तुतः पुरानी गुरुकुल प्रथा के प्रतीक हैं। संस्कृत काल में इन वर्गों को आम्नाय कहा जाता था। हर शिष्य किसी आम्नाय का सदस्य होता था। आम्नाय शब्द बाद में 'चरण' कहा जाने लगा। मुगलकाल में चरण शब्द घराना बन गया।[5]

घराना शब्द का आशय डॉ.संध्या महाजन ने परिवार से लिया है। उनका मत है, कि कतिपय प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने अपनी विशिष्ट शैली का निर्माण किया। शैली विशेष के अनुयायी हुए, वे उस घराने के कहलाने लगे या ऐसा कोई व्यक्ति विशेष गुण जो अगली दो–चार पीढ़ियों को प्रिय हो या गुण विशेष की स्थापना में उन पीढ़ियों का निरन्तर योगदान रहा हो, वही आदर्श व प्रेरणा दोहराई गयी हो, तो वह घराना शिक्षा पद्धति कहलाती है।[6] डॉ.राधिका शर्मा संगीत की दृष्टि से 'घराना' शब्द का आशय शैली या रीति से ग्रहण किये जाने की बात कहती हैं। उनका मत है, कि– संगीत में 'घराना' का अर्थ – एक विशेष स्थान पर प्रचलित अथवा व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित संगीत की रीति या 'स्टाईल' (शैली) है जो अपने में कुछ विशिष्टताओं को समेटे होते है।[7] पं.तीरथराम आज़ाद घराना को परम्परा के रूप में देखते हैं। अर्थात् कथक नृत्य की जो शैली परम्परागत रूप से स्थापित हो जाये, इसी के समानान्तर शिष्यों के माध्यम से परम्परा का निर्वहन होता हो। आजाद जी ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य का उल्लेख किया है, कि– घराने का सम्बन्ध एक ऐसी कला से है, जो कि परम्परागत पूर्वजों से चली आ रही है। घराने का मुख्य कलाकार अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के बल पर कोई नवीन प्रयोग करता है, जब उसकी शैली स्थापित हो जाती है तो घराना बन जाता है।[8]

तथ्यतः कथक नृत्य में किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित या पल्लवित पद्धति या तकनीक या शैली, जिसे उस व्यक्ति ने अपनी पीढ़ी को हस्तांतरित किया हो, जो निर्बाध रूप से उस व्यक्ति के साथ–साथ तीन पीढ़ीयों तक निर्बाध रूप से गतिशील रही हो, तो घराने के रूप में ग्रहण किया जाता सकता है। इस संबंध में गुरु तीरथ का मत भी अवलोक्य है– कि कोई भी परम्परा उस समय तक घराना नहीं कहलाती जब तक वह परम्परा कम–से–कम तीन पीढ़ियों से न चली आ रही हो। दूसरे शब्दों में हर घराने में तीन योग्य कलाकार अवश्य होने चाहिए– गुरु अर्थात् संस्थापक, उसके शिष्य या पुत्र और पुत्र का शिष्य या शिष्य का शिष्य।[9]

वर्तमान में प्रचलित संस्थागत शिक्षा प्रणाली से परे घराना पद्धति कथक नृत्य प्रशिक्षण के क्षेत्र में अहम भूमिका रही है। विदूषी कथक गुरु डॉ.ज्योति बख्शी इसे संवेदनात्मक पद्धति मानती हैं। उनका मत है, कि जो घराना पद्धति सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करती है। अथक साधना, एकाग्रता, लगन, गुरु के प्रति व कला के प्रति भी आत्मीय भावना भी उत्पन्न करती है। यह एकता व प्रेम का, श्रद्धा व भक्ति का भी सबक साथ लिये चलती है। इस प्रशिक्षण में गुरु स्वतन्त्र रूप से प्रशिक्षण संस्थाओं की अन्य दुनियादारी से, अनेक शिक्षकीय सरकारी ज़िम्मेदारियों से व मानसिक दबावों से दूर अपनी पूर्ण अस्मिता के साथ, आत्मीयता से प्रशिक्षण देता है। एक पारंगत व कलाकार गुरु के साये में शिष्य स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है, उसके मन में अपने गुरु की कला मण्डित गरिमा से पूर्ण निकटता निरन्तर आत्मतुष्टि व आत्मगौरव की भावना जगाती है। अपने भविष्य के प्रति वह पूर्ण रू‍प से आशान्वित रहता है। अपने गुरु की प्रवीणता व कलाजगत को दिया गया महत्वपूर्ण योगदान उसके लिए स्मरणीय व प्रेरणादायी और आदर्श प्रस्तुत करता है। परम्परागत् प्रशिक्षण पद्धति में परीक्षा द्वारा कोई डिग्री निर्धारित नहीं रहती, किन्तु प्रतिदिन गुरु द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण– रीक्षण के बाद भी व पूर्ण संतुष्टि मिलने पर ही शिष्य की शिक्षा आगे बढ़ती है। घरानेदार वैशिष्ट्य व बारीकियों से पारंगत होकर मंच के लिए पूर्ण समर्थ कलाकार बन जाना ही शिष्य की महत्वपूर्ण डिग्री है।

कथक का रायगढ़ घराना

पूर्व बिन्दुओं में की गई 'घराना' की उत्पत्ति और अवधारणा से कथक या संगीत कला में घरानों की संकल्पना स्पष्ट हो जाती है। यह भी स्पष्ट है, घराना की अपनी शैली और विकसित पद्धति होती है। तीन पीढ़ी तक सुविकसित शिष्य परम्परा के माध्यम से ही घराना स्थापित हो पाता है।

रायगढ़ दरबार

जहाँ तक प्रश्न 'दरबार' शब्द का है, तो प्रायः कथक के पूर्वस्थापित घरानों के संदर्भ में सामान्य तौर पर नहीं लिया जाता। केवल रायगढ़ में पल्लवित कथक नृत्य परम्परा में इसे 'रायगढ़ दरबार' कहा गया। उल्लेखनीय है, कि जिस दौरान 'घरानों' की संकल्पना अपने शैशव काल में थी, उस प्रायः कथक कलाकारों किसी–न–किसी राजा का आश्रय मिला। इस संबंध में पूर्व में भी कहा जा चुका है। जयपुर या लखनऊ घरानों के संबंध में यह बात पूरे विश्वास के साथ और स्पष्ट और निविर्वाद सत्य है, कि जिन्हें कथक नृत्य का सबसे प्राचीन घराना होने का गौरव प्राप्त है, उनका विकास भी जयपुर और लखनऊ राजरदबारों में ही हो सका। इतिहास इस बात का साक्षी है, जिसे झुठलाया नहीं जात सकता। इसी क्रम में रायगढ़ दरबार में भी लखनऊ और जयपुर की भाँति कथक नृत्य को प्रश्रय मिला, इसकी अपनी शैली का विकास हुआ और सबसे महत्वपूर्ण बात यह, कि कथक नृत्य हेतु ग्रंथों की रचना भी हुई, जो इससे पूर्व कथक के किसी भी घराने में प्रायः न हो सकी।

रायगढ़ शैली

पूर्व बिन्दुओं में किये अध्ययन में विद्वानों के सुविकसित कथक या संगीत शैली की चर्चा की है। राजा चक्रधर सिंह, जो स्वयं कथक नृत्य में पारंगत थे; दरबार में राज्याश्रय प्राप्त अन्य कथकाचार्यों के माध्यम से राजा साहब ने रायगढ़ की अपनी शैली का विकास किया। कथक नृत्य के भविष्य में निवेश किया, अर्थात् लोक

कलाकारों को देश के प्रसिद्ध कथकाचार्यों के माध्यम से शिक्षित करवाया। इससे शिष्य परम्परा भी स्थापित हुई और इसी के समानान्तर रायगढ़ की अपनी शैली का भी विकास हुआ।

इससे पूर्व घरानों की उत्पत्ति और अवधारणा के आधार पर तथ्यतः घराने के संदर्भ में विद्वानों द्वारा दिये गये तर्कों एवं परिभाषाओं के आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्राप्त होते हैं, जिनका रायगढ़ की कथक परम्परा के अनुसार अध्ययन निम्नानुसार वर्णित है–

1. **गुरु–शिष्य परम्परा घरानों की अभिन्न सहचारिणी रही है–** अध्ययन से स्पष्ट है, कि रायगढ़ राज दरबार में राजा भूपदेव सिंह तथा राजा चक्रधर सिंह द्वारा दरबारी कथक गुरुओं के माध्यम से 'गुरु शिष्य परम्परा' पद्धति के अंतर्गत लोक कलाकारों को कथक की विधिवत् शिक्षा दिलवायी।
2. **जनसामान्य से मान्यता प्राप्त शैली ही घरानों के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है–** राजा चक्रधर सिंह ने स्वयं की रचनात्मकता एवं दरबारी कथकाचार्यों की विद्वत्ता से कथक नृत्य की नवीन शैली का सूत्रपात किया। कालान्तर में यही शैली रायगढ़ शैली या दरबार के रूप में प्रसिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त रायगढ़ में पल्लवित हुई इस शैली को कथक जगत के शेष घरानों के आचार्यों ने भी स्वीकार किया, क्योंकि कहीं–न–कहीं जयपुर और लखनऊ घरानें के अनेक कथकाचार्य रायगढ़ दरबार में गुरु के पद पर कार्य कर रहे थे। अतः उन्होंने भी इस शैली को सहर्ष स्वीकार किया।
3. **घराने से तात्पर्य 'घर' से है, जिसकी अपनी पहचान लिए कुछ अलग प्रकार की विशेषतायें हों–** राजा चक्रधर सिंह ने लोक कलाकारों को कथक नृत्य की शिक्षा देने हेतु सर्वोत्तम व्यवस्था की थी। उन्हें आवासीय वातावरण उपलब्ध करवाया तथा प्रसिद्ध कथकाचार्यों से नृत्य की शिक्षा दिये जाने की व्यवस्था की।
4. **स्थान विशेष में पल्लवित अथवा व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित संगीत की रीति या शैली, जो अपने भीतर विशिष्टताओं को समेटे हुए हों, घराना कहा जाता है–** इस संबंध में पूर्व में चर्चा की जा चुकी है। स्थान विशेष से आशय रायगढ़ से है और व्यक्ति विशेष से आशय राजा चक्रधर सिंह से, जिन्होंने संगीत (विशेष रूप से कथक नृत्य) की अपनी ही रीति या शैली का अविष्कार किया। यह शैली कथक के पूर्व प्रचलित घरानों की शैलियों से सर्वथा भिन्न थी और रायगढ़ को उनसे स्पष्ट रूप से पृथक् एक शैली के रूप में स्थापित करने में सक्षम भी प्रतीत होती है।
5. **तीन पीढ़ी तक चली आ रही परम्परा घराना कहलाती है–** रायगढ़ में कथक नृत्य का प्रारंभ मुख्य रूप से राजा भूपदेव सिंह से माना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने कथक नृत्य को रायगढ़ में न केवल स्थापित किया, अपितु कथक नृत्य का विविधत् प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था भी करवाई, जिसे राजा चक्रधर सिंह ने गति प्रदान की। इस दृष्टि से इस घराने का प्रारंभ यदि राजा भूपदेव सिंह से माना जाये, तो तीन से कहीं अधिक पीढ़ियाँ हो जाती हैं। यदि यह मान लिया जाये, कि भूपदेव सिंह कथक नर्तक नहीं थे, तो ऐसी स्थिति में राजा चक्रधर सिंह एवं इनके बाद की शिष्य परम्परा के आधार पर भी तीन से अधिक पीढ़ियों तक कला का हस्तांतरण अविरल चल रहा है, जो घराने होने की शर्त को परिपूर्ण करती है।
6. **हर घराने में तीन योग्य कलाकार हों– प्रथम गुरु (या संस्थापक); द्वितीय – उसके शिष्य या पुत्र; तृतीय – पुत्र का शिष्य या शिष्य का शिष्य–** राजा भूपदेव सिंह के समय से ही रायगढ़ में योग्य कलाकारों व कथकाचार्यों के माध्यम से शिक्षा प्रारंभ हो चुकी थी। किन्तु राजा चक्रधर सिंह स्वयं एक अच्छे नर्तक थे। अतः इस दृष्टि से यदि राजा साहब को ही प्रथम गुरु या संस्थापक हुए, जिन्होंने स्वयं तथा अन्य कथकाचार्यों के माध्यम से अनेक शिष्य तैयार किये। इन शिष्यों ने भी अपने शिष्य तैयार किये, जो अब भी समान रूप से गतिशील है। इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है, कि वर्तमान में रायगढ़ शैली में नृत्य करने वाले कथकों की संख्या अत्याधिक विस्तृत हो चुकी है। यह अब एक विशाल वृक्ष का रूप ले चुका है।

उक्त बिन्दुओं में किये गये अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः यह बात पूर्णतः पुष्ट हो जाती है, कि रायगढ़ की कथक परम्परा 'घराने' के रूप से स्थापित हो चुकी है। साथ ही, यह बात भी पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाती है, कि कथक का जयपुर और लखनऊ घरानों का वास्तविक विकास भी दरबार में हुआ, जिनकी अपनी–अपनी शैली है। यही बात रायगढ़ के संदर्भ में भी समान रूप से लागू होती है। वस्तुतः इस आधार पर "कथक का रायगढ़ घराना" भी अपने आप में पूर्ण रूप से सार्थक हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जयपुर, लखनऊ और बनारस के बाद रायगढ़ भी कथक नृत्य के चौंथे घराने के रूप में स्थापित होने की पूर्ण क्षमता, सामर्थ्य और शैलीगत विशेषता के साथ–साथ सुविस्तृत शिष्य परम्परा रखता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, डॉ.राधिका, "भारतीय संगीत को संस्थानों और मीडिया का योगदान", संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.17–18
2. दत्ता, डॉ.पूनम, "भारतीय संगीत शिक्षा और उद्देश्य", राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005, पृ.47–48
3. वही, पृ.53 एवं उमेश जोशी, "उत्तर भारतीय संगीत का इतिहास", मानसरोवर प्रकाशन, फिरोजाबाद, पृ.47
4. शर्मा, डॉ.राधिका, वही, पृ.20 एवं व्ही.एच.देशपाण्डे, "घरानेदार गायकी", पृ.24
5. आज़ाद, पं.तीरथराम, "कत्थक ज्ञानेश्वरी", नटेश्वर कला मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.244
6. पलनीटकर, डॉ.अलकनन्दा (सम्पादक), "शास्त्रीय संगीत शिक्षा : समस्यायें एवं समाधान", डॉ.श्रीमती संध्या महाजन का लेख– "घरानेदार संगीत शिक्षाःएक समीक्षात्मक दृष्टिकोण", आदित्य पब्लिशर्स, बीना, म.प्र., 2000, पृ.28–29
7. शर्मा, डॉ.राधिका, वही, पृ.20 एवं तृप्त कपूर, "उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा", हरमन पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृ.37
8. आज़ाद, पं.तीरथराम, वही, पृ.244
9. वही, पृ.245